ओ३म्

वार्षिक शुल्क 50/- रु.
आजीवन 500/- रु.
इस अंक का मूल्य 5/- रुपये

आर्य प्रेरणा

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(आर्यसमाज राजेन्द्र नगर का मासिक मुख-पत्र)

दूरभाषः 011-25760006 Website - www.aryasamajrajindernagar.org सम्पादक : डॉ. भारद्वाज पाण्डेय

वर्ष-6 अंक 7, मास जुलाई 2013 विक्रमी संवत् 2070, दयानन्दाब्द 189 सृष्टि संवत् 1960853112

त्रिगुण सूत्र

टी.एल. वासवानी

एक सिन्धी किम्वदन्ती है :- 'सच्ची महान् आत्मायें छिपे हुए मनुष्यों में पाई जाती हैं', परन्तु उनके अन्दर की सच्चाई बहुत देर छिपी नहीं रहती। यह शनैः शनैः दूसरों पर प्रकट होती है। गेटे ने कहा है:-

'वस्तुतः महान्, सच्चे, उच्च, पुरुष अपना मार्ग मौन से ही निकाल लेते हैं'।

ऋषि दयानन्द के जीवन और सन्देश की सच्चाई उसके देशवासियों पर प्रकट हो जाती है। मेरा विश्वास है कि आगामी दिनों में यह और भी अधिक प्रकट होगी। मुझे हर्ष हुआ कि अभी हाल में लण्डन में हुई धार्मिक कांफरेंस के समय एक ईसाई शिष्य ने उच्च प्रशंसा के भाव दयानन्द के विषय में प्रकट किये थे। गत वर्ष दिवाली के अवसर पर लण्डन की एक सभा में ऋषि-स्मृति में प्रशंसापूर्ण उद्गार निकले थे। कुछ दिन हुए कि जञ्जीवार (पूर्व अफ्रीका) से आये एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि वहां के स्त्री-पुरुषों की बड़ी संख्या पर दयानन्द का गहरा प्रभाव है। मैं उसकी जीवनी में एक त्रिगुण सूत्र (तीन तार का धागा) फैला हुआ देखता हूं **वह 'ऋषि', 'योगी' और 'कर्मवीर' है**। मैं जब उसके चित्र को देखता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह मानो अपने देश और प्राचीन इतिहास की पुकारों को सुन रहा है! कोई प्रेरणा उसे घर से बाहर निकालती है, बहुत वर्षों तक इधर-उधर घुमाती है और अन्त में वह 'प्रज्ञाचक्षु संन्यासी' के पास आता है और उनका आशीर्वाद पाकर अपने मिशन पर चल देता है। वह अपने जीवन में तपस्या किये बिना अपने 'मिशन' पर नहीं निकलता। एक **'तपस्वी' ही को 'मनुष्यों के शिक्षक' बनने का अधिकार है**। क्या अर्वाचीन भारत में दयानन्द से बढ़कर कोई तपस्वी हुआ है?

दयानन्द की जंगलों और पहाड़ की चोटियों पर घूमने की रोमांचकारी कथा है! उसका कुछ अंश उन्होंने हमें अपने 'आत्मचरित' में बतलाया है। इन भ्रमणों में दयानन्द का उद्देश्य केवल धर्मसम्बन्धी दर्शनशास्त्र का अध्ययन करना न था किन्तु योगविद्या को सोचना था। मैं दयानन्द को केवल संशोधक ही नहीं समझता प्रत्युत योगी भी मानता हूं। वर्षों की खोज और कष्टों के पश्चात् नर्मदा के किनारे पर दयानन्द को सच्चे योगी मिलते हैं जिन्हें वह 'दीक्षित' योग विद्या में निपुण कहता है। 'चाणोदा कन्याली' में उसे वे साधु मिलते हैं जो 'योगानन्द' नाम से प्रसिद्ध थे। उनके विषय में दयानन्द कहते हैं कि वे 'योगविद्या' में पारंगत थे। वे आत्मचरित में लिखते हैं कि "उनके पास मैं एक विद्यार्थी के रूप में गया और उन से मैंने योगविद्या के सिद्धान्त और कुछ क्रियाएं भी सीखीं" दयानन्द को चाणोदा में दो और योगी मिले जिनका नाम ज्वालानन्द पुरी और शिवानन्द गिरी था। कहते हैं कि उनके पास मैंने योग का अभ्यास किया और हम तीनों 'उच्च योगविद्या' के विषय में बहुत-सा विचार करते थे। अन्त में वे चले गये और उनके कथनानुसार एक मास के पश्चात् मैं उन्हें मिलने अहमदाबाद के समीप दूधेश्वर मंदिर में गया, जहां कि उन्होंने मुझे योगविद्या के अंतिम रहस्य और क्रियायें बताने की प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की, मैं इस महान् विद्या के क्रियात्मक भाग के ज्ञान के लिये उनका ऋणी हूं। इस के बाद मुझे पता चला कि अब तक मुझे जो योगी मिले हैं उन से भी बड़े योगी-परन्तु सबसे बड़े वे भी नहीं राजपूताना के आबू पहाड़ी की चोटियों पर हैं। मैं आबू पहाड़ की ओर 'अवैदा भवानी' आदि प्रसिद्ध पवित्र स्थानों को देखने के लिये चल पड़ा और वे लोग जिन की मैं तलाश में था, अंततः मुझे भवानीगिरी पर मिले और उन से मैंने बहुत सी योग की क्रियायें सीखीं।" जोशीमठ में भी उन्हें कुछ योगी मिले जिनसे उन्होंने योगविद्या सीखी।

बहुधा समझा जाता है कि दयानन्द का जीवन केवल प्रचार-यात्राओं और सार्वजनिक शास्त्रार्थों का जीवन है। मेरा

'आर्य-प्रेरणा' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

विश्वास है कि उसका जीवन यथार्थ में **'तपस्या'** और **'योग'** का जीवन था। उसके 18 वर्ष के महान् कार्य के लिये और उसके जीवन के 18 वर्ष अत्यन्त कर्मण्यता से भरपूर हैं – शक्ति उस को **वैराग्य अभ्यास** और **तप** से प्राप्त हुई थी जो कि योग के मुख्य अंग है। गुरु से आशीर्वाद पाकर वह प्रचार के लिये निकलते हैं। चार वर्ष के पश्चात् वह फिर 'एकान्त वास' करते हैं। वह गंगा के किनारे उच्च जीवन प्राप्त करने और समाधि लगाने के लिये फिर एकान्तवास करते हैं। वहां पर उनका अद्भुत जीवन है! कोई कपड़े नहीं, केवल एक लंगोटी तन पर है, शिशिर ऋतु की ठण्डी हवा बह रही है, पर कोई बिस्तर नहीं। वह रेती पर सोते हैं। वह आदित्य **'ब्रह्मचारी'** अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इन पांच यमों तथा नियमों का पालन करता हुआ एकान्त में योगाभ्यास करता है।

हे एकान्त किसने तुम्हारा गान गाया है?
किसने तुम्हारे मधुर स्वर को जाना है?
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हें जाना!
केवल नग्न आत्मा ने तुम्हारे
लावण्य का रसपान किया है।

यह एकान्त समय की तपस्या और ध्यान ही है जिससे मनुष्य सचमुच **'उस छिपे हुए परमेश्वर'** से सहयोग प्राप्त करता है जिससे जीवन का सौन्दर्य तथा शक्ति बढ़ती है। रेवरेण्ड टी. जे. स्काट (क्रिश्चियन मिशनरी) ने उस योग के समय नदी के किनारे रहने वाले दयानन्द का सुन्दर चित्र खींचा है। स्काट लिखते हैं:-

"मध्यान्होत्तर मैंने जल के पास रेत में पड़े हुये एक फकीर को देखा जिसकी पवित्रता और विद्या के विषय में मैंने बाजार में मनुष्यों की भीड़ में सुना था। मैंने उस को छोटी सी फूंस की झोंपड़ी में बैठे हुए पाया। वे बड़े प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनका शरीर हरक्यूलस के समान बृहत्काय वाला, शिर विस्तारयुक्त और सुन्दर, तथा परोपकार पूर्ण चेहरा था। वे लगभग नग्न थे और वे एक साथ मनोहर बातचीत में लग गये। मैंने उनको उन साधुओं की श्रेणी में पाया जिन्होंने सर्वथा संसार को त्याग दिया हो और जो ईश्वर के सन्तत ध्यान में रहते हों। बातचीत से पता लगा कि वे बुद्धिमान् और हिन्दुओं की प्राचीन विद्या के पूर्ण पण्डित थे। वे केवल संस्कृत ही बोलते थे और हमारी बातचीत एक दुभाषिये के द्वारा होती थी।"

दयानन्द, एक **महान् योगी** था! मुझे डर है कि बहुत से आर्यसमाजी भी दयानन्द को इस रूप में नहीं देखते। हिन्दुओं का अधिकांश भाग 'उन्हें मूर्तिभञ्जक' अथवा अधिक से अधिक उन्हें एक 'संशोधक' के रूप में देखता है। मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने योग विद्या का अध्ययन किया था। एक दिन उनके पास एक शिक्षित युवक आया जिसे योग की शक्ति में विश्वास न था-

वह पूछता है 'स्वामी जी क्या आप का योग की सिद्धियों में विश्वास है'? दयानन्द का उत्तर सारगर्भित है:- क्या मेरा कार्य इसका साक्षी नहीं? मनुष्य उन से पूछता है कि "क्या पतञ्जलि के दर्शन में जो योगसिद्धियाँ लिखी हैं वे विश्वसनीय हैं"? दयानन्द उत्तर देता है "तुम्हारी शंका बुद्धिपूर्वक नहीं है। योग का प्रत्येक अक्षर सत्य है। योग कोई पुराण नहीं, प्रत्युत वह एक शास्त्र है क्योंकि क्रियायुक्त आध्यात्मिक अनुभव से बनकर एक विद्या के रूप में संग्रथित हुआ है"। 1880 के दिसम्बर के थियासोफिस्ट के अंक में स्वामी दयानन्द, कर्नल आल्काट और मैडम ब्लैवटस्की के बीच हुए एक बड़े रोचक वार्तालाप का उल्लेख है जो कि मेरठ में हुआ था। उनके कुछ प्रश्नों के उत्तरों से दयानन्द के योगविद्या-विषयक विचार प्रकट होते हैं। दयानन्द ने कहा कि एक सच्चा योगी अपने सहयोगी दूसरे योगी के साथ बिना किसी तार पोस्ट आदि बाह्य साधन के विचार परिवर्तन कर सकता है, एक योगी दूसरों के मन की बातों को जान सकता है। परन्तु ऋषि ने ठीक बतलाया कि योगी एक "जादूगर" नहीं है। योग प्रकृति के नियमों का विरोध नहीं प्रत्युत वह तो प्रकृति के नियमों के वास्तविक अध्ययन पर निर्भर है और न सच्चा योग बाह्यवस्तुओं का ही है। इसे दयानन्द ने 'व्यवहार विद्या' कहा है। इसमें और योगविद्या में अन्तर है। साथ ही उच्च योग अर्थात् 'राजयोग' का हठयोग से भी भेद करना चाहिये। हठयोग जिसका सम्बन्ध आसन और प्राणायाम से है, शरीर का व्यायाम है। राजयोग का मन से सम्बन्ध है अर्थात् 'प्रत्याहार' 'धारणा' और 'ध्यान' से, यह मन का सुधार करता है और आत्मिक शक्ति को उभारता है। राजयोग के, जिसकी पराकाष्ठा समाधि है, बहुत से नियम हैं। योग की दीक्षा में प्रवेश) पाने के लिये, ऋषि दयानन्द भाष्य भूमिका में लिखते हैं कि, मनुष्य को आवश्यक है कि नियमों के अनुसार चले। 'ब्रह्मचर्य' या पवित्रता एक मुख्य नियम है। दूसरा नियम है शुद्ध और बलवान् मन होने का। योग निर्बल मस्तिष्क वालों के लिये नहीं है। योग के लिये 'इन्द्रियजय' 'एकाग्रता' और 'ध्यान' की आवश्यकता है। एक तीसरा नियम मेरी समझ में 'निर्भयता' है। जहां भय है वहां योग नहीं रह सकता। दयानन्द का यह कथन वास्तव में ठीक है कि- "योग सब विद्याओं में कठिन है और इस समय बहुत कम लोग उसके सीखने के लायक हैं"। निस्सन्देह बहुत कम, क्योंकि हमारे आधुनिक जीवन में चित्त-वृत्तियों का विक्षेप (इधर-उधर फैलना) और उत्तेजना होती रहती है। अधिकांश लोगों के लिये उन का 'कर्त्तव्य' ही योग की शिक्षा है। उनको पहले अपने कर्त्तव्य को ध्यान और सत्य के साथ करना सीखना चाहिये फिर वे दूसरे योग-साधनों के योग्य हो सकते हैं। इसलिये 'स्वाध्याय' और 'समाज सेवा' की आवश्यकता है। एक से मन की एकाग्रता और अतएव शुद्धि होती है और दूसरे से 'प्रेम' उभरता है, इसलिये हृदय की शुद्धि होती है। मैंने कहा है कि योग की शक्ति के विकास के लिये तपस्या आवश्यक है। परन्तु सच्ची तपस्या उसका नाम नहीं है जो झूठे साधु अपने शरीर को कष्ट पहुंचा कर मूर्ख स्त्री-पुरुषों से धन-हरण करने के लिये करते हैं। दयानन्द की तपस्या एक साधारण वैरागी की तपस्या के समान न थी जो अपनी आत्मा को कारागार में बन्द करता है और बन्धनों से जकड़ देता है। दयानन्द की तपस्या **'डायोजिनीस'** के समान एक मनुष्यद्वेषी की भी न थी, परन्तु वह तपस्या एक मनुष्य जाति के प्रेमी की थी। जिसका हृदय आशावाद से अत्यन्त भरपूर था, उसका नाम **'दयानन्द'** बिना कारण के नहीं है। 'आनन्द' शब्द का अर्थ हर्ष है और वह ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में बतलाता है "आनन्द की उपस्थिति में ही विद्या

(सरस्वती) का निवास होता है" 'सरस्वती' (विद्या) सन्देहवादी या मनुष्यद्वेषी के लिये नहीं है। विद्या उसी को फलती है जिसके हृदय में आनन्द की तपस्या एक मनुष्य तत्त्वज्ञ (Humanist) की तपस्या है। इसका उद्देश्य उसे मनुष्य जाति की सेवा करने के लिये पवित्र, संयमयुक्त बलवान् बनाना था। उसकी तपस्या ने उसके मन और शरीर दोनों की शक्ति को बढ़ाया था।

लोग 'दयानन्द' पर आश्यर्च करते हैं कि वह गंगा के किनारे केवल एक लंगोटी धारण किये सरदी और धूप में बैठा रहता था। वे भूल जाते हैं कि उसने आत्मसंयम से अपने शरीर को चट्टान के समान दृढ़ बना लिया था। आज हम उसके मार्ग की बुद्धिमत्ता का अनुभव करते हैं। क्योंकि आज कल हम 'सूर्यताप से इलाज' (Heliotherapy) की बात सुनते हैं। आज पश्चिम चिकित्सा विज्ञान ने इस बात का अनुभव करना प्रारम्भ किया है कि अधिक वस्त्र न केवल स्वास्थ्य के लिये अनावश्यक ही हैं प्रत्युत हानिकारक हैं। आज हमें कपड़ों की एक नयी फिलासफी वह बात सिखला रही है जिसे एक पीढ़ी पूर्व दयानन्द ने उपदेश और उदाहरण द्वारा बतलाया था कि तपस्या शरीर को दृढ़ बनाती है और जीवन के दो सबसे बहुमूल्य खजाने स्वास्थ्य और बल सूर्य की धूप तथा खुली वायु से प्राप्त होते हैं।

दयानन्द की महत्ता एक कर्मवीर के रूप में भी है। इस ब्राह्मण के अन्दर जो संन्यासी हो जाता है क्षत्रिय (युद्धशील) आत्मा वास कर रही है। वह एक बड़ा योद्धा है। कट्टरता के विरुद्ध वह कैसा घोर संग्राम करता है! अहिंसा शान्ति, या सहिष्णुता का अर्थ 'असत्य' या 'गलती' से मेल नहीं हो सकता। मैं कभी-कभी सोचता हूं कि अहिंसा को पूरा करने वाली दूसरी सच्चाई **'प्रतिरोध'** है। 'जीसस के विषय में हम पढ़ते हैं कि एक अफसर ने जो पास खड़ा हुआ था अपने हाथ से जीसस को चोट लगाकर कहा कि 'तुम बड़े धर्मगुरु को इस प्रकार क्यों जबाब देते हो?' जीसस ने उत्तर दिया- "यदि मैंने 'पाप' की बात कही है तो तुम उसे कहो, पर यदि ठीक कही है तो मुझे क्यों चोट पहुंचाते हो?" क्यों चोट पहुंचाते हो' इन शब्दों से जीसस के अन्दर से **'प्रतिरोध'** की फिलासफी का साक्ष्य मिलता है। दयानन्द ने उन लोगों से, जो बाहर या भीतर से हिन्दू समाज पर आक्रमण कर रहे थे, कहा कि 'क्यों मेरी आर्य जाति को चोट पहुंचाते हो?' दयानन्द उसकी सहायता के लिये एक योद्धा की शक्ति के साथ आगे बढ़ता है।

'प्रतिरोध' का तत्त्व गीता के दर्शनशास्त्र में पाया जाता है और इसमें उस सच्चाई पर जोर है जिसका मुझे भय है कि कतिपय क्राइस्ट के उपदेश अर्थात् प्रेम के सन्देश के व्याख्याकारों ने भुला दिया है। प्रेम घृणा की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता के साथ 'प्रतिरोध' कर सकता है। दयानन्द ने अपनी पूरी शक्ति से उन मिथ्या बातों का प्रतिरोध किया जो हमारे समाज की जीवन शक्ति को नष्ट कर रही थीं। दयानन्द ने एक वीर के समान संकल्प किया और दुःखों को झेला। इस दृष्टि से वह लूथर के समान था। परन्तु दयानन्द को **'भारत का लूथर'** कहना जैसा कि बहुत से आर्यसमाजी और यूरोपियन समालोचक करते हैं, ऋषि के साथ पूरा न्याय नहीं करता है। दयानन्द मेरी समझ में अपने जीवन की तपस्या और अपने सन्देश के कारण 'लूथर से' बढ़कर हैं। मैं समझता हूं कि हमारे इस युग में किसी दूसरे मनुष्य ने वेदों की महान् सच्चाइयों और उनके सार्वभौम मूल्य को दयानन्द की अपेक्षा अधिक सच्चाई से नहीं देखा।

उनके जीवन की मुख्य आकांक्षा आर्यजाति का नया संगठन करने की थी। और उनका पुनः संगठन का प्रकार 'पश्चिमीपन' की नकल न थी। पश्चिमी सभ्यता की जड़ें 'भोग' से हिल रही हैं। वह ऐन्द्रियिक सुख की सभ्यता है। ऋषि दयानन्द जातीय जीवन को **'विद्या'** और **'समर्पण'** के नाम पर बनाना चाहता था। विद्या अन्धविश्वास को दूर करेगी और विद्यारूपी दीपक में वह चाहता था कि हम तपस्या का तेल डालें। 'विद्या' ही वह प्रकाश है जिससे जाति अन्धकार से निकल सकेगी।

'विद्या' और **'तपस्या'** ज्ञान और समर्पणपूर्वक किये काम ही भारत का उद्धार कर सकेंगे। ऐसा ऋषि दयानन्द का विश्वास था। इसका साक्ष्य उनके जीवन से मिलता है क्योंकि यह ऋषि एक **'कर्मयोगी'** भी था। बारम्बार वे अपने व्याख्यानों में और अपने वेदभाष्य में क्रियानिष्ठ होने और 'कर्म' के महत्त्व को प्रकट करते हैं। उसकी फिलासफी के अनुसार कर्मनिष्ठा आध्यात्मिकता से अलग नहीं है। वह फिलासफी प्लेटो की थी जो समझता था कि "सबसे उच्च अवस्था 'कर्मरहित शान्त जीवन' से प्राप्त होती है, वैसी ही फिलासफी अरस्तू की थी जो कहता था कि ईश्वर की दृष्टि में सब काम "तुच्छ" और 'अयुक्त' हैं। और 'आधार' की पराकाष्ठा एक प्रकार का 'ध्यान और विचारयुक्त जीवन है'? ऋषि दयानन्द की फिलासफी उच्चतर प्रकार की है। उसके अनुसार-आध्यात्मिक जीवन कर्मण्यता में है, धर्म 'कर्म का नाम है- परन्तु वह कर्मण्यता ईश्वरभक्ति के साथ हो, वह कर्म ईश्वर को समर्पित करके किया गया हो।

पुराने धर्मग्रन्थों में किसी **'बोधिसत्व'** की कथा आती है। वह स्वर्ग के द्वार पर खड़ा है। वह 'मुक्ति' में प्रवेश करने को है। ठीक उसी समय पृथ्वी के किसी भाग से एक आवाज आती है- "मैं पीड़ित हो रहा हूं क्या कोई मेरी सहायता न करेगा?" इस पर बोधिसत्त्व पुकार उठता है- "मुझे मुक्ति या स्वर्ग नहीं चाहिये - मुझे एक भाई या बहिन का दुःख दूर करने के लिये फिर वापिस पृथ्वी पर जाना है। ऐसा ही 'बोधिसत्त्व वह व्यक्ति भी था जिसकी हम दयानन्द नाम से पूजा करते हैं। वह अनुभव करता था कि जब तक भारत पुनर्जागृत न हो और आर्यजाति पुनरुज्जीवित न हो, उसे शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिये बिना आराम किये कट्टर लोगों के विरोध का मुकाबला करता हुआ 'आर्य सन्देश' का जो विद्या और कर्म की तथा सर्वोपरि पुरुष की पूजा की घोषणा करता हुआ स्थान-स्थान पर जाता है। लोगों ने तुझ पर हे भारत के बोधिसत्त्व ईंटों और पत्थरों की वर्षा की थी। परन्तु आज निस्सन्देह हम तुझे धन्य समझते हैं और तेरे ऊपर अपनी **'श्रद्धा और प्रेम के** वसन्त-पुष्पों' की वर्षा करते हैं।

शिक्षा के अंग

– वैद्य गुरुदत्त जी

मानव में दो तत्त्व हैं, शरीर और आत्मा। अतएव शिक्षा के भी दो अंग हैं। एक अंग है, इन्द्रियों को शिक्षित करने के लिये और दूसरा अंग है, जिसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है।

शिक्षा की सहायता के लिये दो साधन हैं मन और बुद्धि। बुद्धि और मन तो सांझे साधन हैं इन्द्रियां सम्बन्धी व्यवहार ग्रहण करने वाला और आत्मा सम्बन्धी ज्ञान पाप्त करने वाला। इस कारण मन, बुद्धि की श्रेष्ठता तो दोनों प्रकार की शिक्षा के लिये आवश्यक है। परन्तु शिक्षा इन्द्रियों और जीवात्मा के लिये पृथक्-पृथक् हैं।

जीवात्मा एक अनादि अक्षर और अव्यय तत्त्व है। यह शरीर के नष्ट हो जाने के उपरान्त भी रहता है। यह कर्मों का कर्ता और उसके फल का भोक्ता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फल इस जन्म में और इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में भोगने वाला। इसके अतिरिक्त जीवात्मा कर्म करने के बिना नहीं रह सकता। इस सबका ज्ञान, इसका मन और बुद्धि पर भली-भांति अंकित करना और फिर उसके अनुसार जीवात्मा की इच्छा और प्रयत्न का स्वभाव डालना आध्यात्मिक शिक्षा कहाती है।

किसी वस्तु के निर्माण में प्रक्रिया जानना और उस प्रक्रिया को करना, यह तकनीकी शिक्षा अथवा इन्द्रियों की शिक्षा से होता है।

इस भेद को समझाने के लिये एक दो उदाहरण दे दें तो अधिक ठीक होगा।

एक शिशु पैदा होता है। उसके उत्पन्न होते ही उसके पालन के साधन उन्नत होने लगते हैं। यह क्यों है? इसका ज्ञान अध्यात्म विद्या है। एक व्यक्ति श्रेष्ठ बुद्धि का स्वामी होता है। यद्यपि उसके माता-पिता के घर पर अधिक पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। दूसरा व्यक्ति एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न होने पर भी और सब प्रकार के साधन उपलब्ध होने पर भी मोटी बुद्धि अथवा दुर्बल इन्द्रियाँ और मन रखता है। इस सब का कारण जानना, समझना और उसके अनुरूप व्यवहार करना अध्यात्म शिक्षा कही जाती है।

अध्यात्म विद्या को ब्रह्म विद्या भी कहते हैं और यह माना जाता है कि इस संसार में ब्रह्म तीन हैं। एक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक तत्त्व है। इसे परमात्मा कहते हैं। एक अल्पज्ञ, दुर्बल, परन्तु अनादि और अक्षर है और शरीर पर शासन करता है। यह जीवात्मा कहाता है। यह भी ब्रह्म है।

एक इस दूसरे के भोग की सामग्री के रूप में प्रयोग होता है। इसका मूल रूप भी आदि और अक्षर है। इसे भी ब्रह्म कहते हैं। इस विषय में एक उपनिषद् वाक्य है-

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशा-
वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्।।

-श्वे. उप. 1-9

अर्थ- एक ज्ञानवान्, दूसरा अज्ञानी, एक सर्वशक्तिमान्, दूसरा अशक्त, दो अजर हैं। एक अन्य अजर है। वह भोग किये जाने के योग्य है।

अनन्त है वह आत्मा जो विश्व का रूप है और अकर्ता है। इन तीनों को जो ब्रह्म रूप जानता है, वह ही ज्ञानी है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन तीन तत्त्वों के ज्ञान को ब्रह्म ज्ञान कहते हैं और यही अध्यात्म विद्या है। इसको सिखाना अध्यात्म शिक्षा है।

प्रकृति का मूल रूप तो ब्रह्म है। यह इस कारण कि उस रूप में प्रकृति भी अनादि और अक्षर है। वैसी ही जैसे परमात्मा तथा जीवात्मा अनादि और अक्षर हैं।

प्रकृति परिणामी है अर्थात् इसके दो रूप हैं। एक कृत्रिम है। यह रूप अविनाशी नहीं। इस रूप में यह संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थों में दिखाई देती है। प्रकृति का यह रूप ब्रह्म नहीं है। अतः इस रूप की शिक्षा अध्यात्म विद्या नहीं है।

इस सम्बन्ध में भी एक वेद मंत्र है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा
विद्ययामृतमश्नुते।।

- यजुः. 40-41

अर्थ-विद्या (उन वस्तुओं का ज्ञान जो सदा विद्यमान रहने वाली हैं) और अविद्या (उन वस्तुओं का ज्ञान जो विद्यमान नहीं रहतीं) दोनों का ज्ञान होना चाहिये। अविद्या से इस संसार को सुखपूर्वक पार किया जा सकता है और विद्या से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है।

इस पूर्ण वक्तव्य का निष्कर्ष यह है कि दोनों प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये। इन दोनों प्रकार की शिक्षा को वर्तमान परिभाषा में कहें तो इस प्रकार होगा। एक वह शिक्षा जिससे संसार में सुखपूर्वक रहा जा सके और दूसरी वह शिक्षा जिससे इस संसार से ऊपर उठने के साधन प्राप्त हो सकें।

आज भारत में अविद्या की शिक्षा यथासम्भव दी जाती है। यह भी पर्याप्त नहीं। क्योंकि इस शिक्षा का आधार भी तो मन और बुद्धि हैं। यदि मन और बुद्धि उन्नत नहीं होंगे तो अविद्या भी पूर्ण रूप से नहीं दी जा सकेगी।

दूसरी प्रकार की शिक्षा, जिसे वेद में विद्या कहा है, उसका तो भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति में लेश मात्र भी स्थान नहीं है।

वर्तमान सरकार अपने को सेक्यूलर कहने से दूसरी प्रकार की शिक्षा देने से डरती है। वह विचार करती है कि यदि किसी स्कूल कॉलेज में ब्रह्म विद्या दी जाने लगी तो सरकार का सेक्यूलर रूप नहीं रहेगा।

यद्यपि सरकार का यह भय अकारण है, इस पर भी हम तो शिक्षा, विद्या और अविद्या दोनों को सरकार के अधीन रखने के पक्ष में नहीं हैं।

हम राज्य सेक्यूलर नहीं चाहते। सेक्यूलर एक संदिग्ध अर्थों वाला शब्द है। परमात्मा को अस्वीकार करने से लेकर गंदे व्यवहार तक सब-कुछ इसके अर्थों में

आ जाता है। इसके लिए अंग्रेजी का दूसरा शब्द है Profane। किसी मूर्ख ने सेक्यूलर शब्द को राजनीति के साथ जोड़ दिया है और हमारे 'बुद्धिमानों' ने इस शब्द को मोक्षदाता मान गले से बांध लिया है।

इसके स्थान पर Non-religious (असम्प्रदायिक) शब्द अति उप-युक्त है। मज़हब अथवा सम्प्रदाय सदा रीति-रिवाजों और प्रथा से सम्बन्ध रखते हैं। राज्य उनसे मुक्त होना ही चाहिए। परन्तु यह भाव सेक्यूलर शब्द से स्पष्ट नहीं होता।

साथ ही हम तो यह कहते हैं ब्रह्म विद्या का किसी मज़हब, हमारा मतलब है रीति-रिवाज़ अथवा प्रजा पद्धति से सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा में विश्वास एक वैज्ञानिक तथ्य है। **यह संसार तीन मूल तत्त्वों का बना है। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। इन मूलतत्त्वों के ज्ञान को हम ब्रह्म ज्ञान अथवा अध्यात्म ज्ञान कहते हैं।**

इन तत्त्वों के कार्यों का ज्ञान ही अध्यात्म है और क्योंकि मनुष्य में कार्य करने वाला जीवात्मा है, इस कारण अध्यात्म ज्ञान मनुष्य के कार्यों को ठीक मार्ग पर रखने में सहायक होता है।

दोनों प्रकार की शिक्षा अनिवार्य है।

यह शिक्षा राजनीतिक प्रपंच से पृथक् होनी चाहिए। यह इस कारण कि राजनीति शिक्षा की पथ-प्रदर्शक नहीं होनी चाहिए। वरन् शिक्षा राजनीति को दिशा देने वाली हो।

परन्तु हमारे संविधान के निर्माताओं ने न केवल शिक्षा को राज्य का विषय बना रखा है वरन् इसे देश के उन्नीस राज्यों के पृथक्-पृथक् हाथों में दे रखा है। हम इसे भारत का संविधान बनाने वालों का एक महान् अबुद्ध कार्य मानते हैं।

शिक्षा सम्पूर्ण देश की एक ही संस्था के अधीन होनी चाहिए। यह संस्था राजनीति से पृथक् होनी चाहिए और पूर्ण देश में शिक्षा एक समान होनी चाहिए।

यह हम मानते हैं कि एक बच्चे की शिक्षा तब से आरम्भ होती है जब वह माँ के पेट में अभी दो मास का होता है। हमारे शास्त्रों में उस समय से ही बालक की शिक्षा को माता-पिता के हाथ में लेने को कहा है। उस समय माँ का मन बच्चे के मन को प्रभावित करता है। इसी कारण शास्त्र ने इस समय पुँसवन संस्कार करने का विधान किया है। इस पर भी इस समय की शिक्षा, माता-पिता के अतिरिक्त किसी अन्य के हाथ में नहीं हो सकती।

पाँच वर्ष की आयु तक शिक्षा माता-पिता के हाथ में होती है। यह उसी भाषा में होगी जो बच्चों के माता-पिता बोलते हैं।

इसके उपरान्त अगले पाँच वर्ष तक जो भी शिक्षा हो, वह बालक के माता-पिता की भाषा में हो, परन्तु बाद में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होनी चाहिए।

भारतीय भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी ही होनी चाहिए। इस पर भी इस काल की शिक्षा कितनी मातृभाषा में हो और कितनी हिन्दी अथवा अन्य भाषा, जो भाषा समिति निश्चय करे, में हो, इसका निश्चय किसी भी अवस्था में राजनीतिक बंधनों से बँधे लोगों के हाथ में नहीं होना चाहिए।

इसी में देश का कल्याण है। जो भी देश की भाषा हो, वह कॉलेज की अंतिम श्रेणी तक चले।

कोई भी भाषा हो, परन्तु अंग्रेजी इस कार्य के लिए भारत देश में अनुपयुक्त है। कारण हमने बता दिया है। यह बहुत ही पिछड़ी हुई भाषा है। इसकी लिपि अधूरी है। इसमें ज्ञान भी अधूरा है।

पथरीली नदी

अश्मन्वती रीयते सम्रमध्वमुतिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऋसञ्छि वान्वयमुत्तरेमाभिवाजान्।।

(यजु. 35/10)

इस मन्त्र में इस संसार को पथरीली नदी बताया गया है। नदियां तीन प्रकार की होती हैं। एक तो रेतीली, एक चिकनी मिट्टी वाली और एक पथरीली। रेतीली नदी-जिसमें जलधारा के नीचे रेत (बालू) होता है- जब पानी की गति तीव्र होती है तो पैरों के नीचे का रेत निकलने लगता है, परन्तु इसमें जीवन को भय कम ही होता है।

दूसरी नदी - जिसमें जल धारा के नीचे मिट्टी होती है वह चिकनाहट के कारण पाँव फिसलने पर बहा ले जाकर मृत्यु का कारण तो बन सकती है, किन्तु उसकी चिकनी मिट्टी में पाँव के पंजे यदि गड़ा दिये जायें तो सरलता से स्थिरता प्राप्त होकर प्राण रक्षा सरल नहीं है। कारण यह है कि पत्थरों पर निरन्तर जलधारा के बहते रहने से काई जम जाती है।

काई पर पैर फिसल जाये तब तो मृत्यु की गोद के अलावा और कोई आश्रय प्राप्त ही न हो। पथरीली नदियाँ पार्वत्य प्रदेशों में ही होती हैं। मैदान तक आते-आते तो पत्थरों का घिस-घिस कर बजरी और फिर उससे रेत बन जाता है। मैदानी क्षेत्र समतल होने से पानी का बहाव उतना तीव्र नहीं रहता जितना पार्वत्य क्षेत्र में ढलान के अधिक होने से होता है। इस संसार की उपमा वेद ने पथरीली नदी से देकर, मनुष्य को सावधान होकर संसार में जीवन यात्रा करने, जीवन बिताने का निर्देश किया है। यद्यपि मन्त्र में नदी संज्ञा का प्रयोग नहीं है, किन्तु 'रीयते' शब्द का प्रयोग-जिसका अर्थ 'बह रही है' होता है- यह सपष्ट कर रहा है कि उपमा नदी की ही है।

प्रस्तुति- श्रीमती उमा बजाज

भजन

मुश्किल नहीं है

अगर पाप में आपका दिल नहीं है,
तो ईश्वर का पाना भी मुश्किल नहीं है।

तुझे दुनियाँ काबू में कर लेगी नादाँ,
जो काबू में तेरे तेरा दिल नहीं है।।

"मुसाफिर" है तू हार हरगिज न हिम्मत,
जरा और चल दूर मन्जिल नहीं है।।

स्वर्ग और नरक

– रमेश भम्बानी

स्वर्ग कहते हैं सुखविशेष को। स्वर्ग का स्थान इस पृथ्वी पर कहीं अलग नहीं है। इसी धरती पर स्वर्ग है, इसी पर नरक है। जहाँ पर सुख, स्वस्थ शरीर, प्रेम, शान्ति, सेवा, शुद्धता, यज्ञ की सुगन्धि, वेद के अनुसार जीवन, ईश्वर की योग द्वारा साधना तथा परोपकार की भावना है, वही "**स्वर्ग**" हैं। जहाँ दुःख, क्लेश, अशान्ति, अपवित्रता, वेद विरूद्ध जीवन तथा स्वार्थ है, उसे "**नरक**" कहते हैं।

स्वर्ग किसी जड़ स्थान-विशेष को नहीं कहते, अपितु वह सभी स्थान **स्वर्ग** बन जाते हैं। यदि हम इस जन्म में अपने पवित्र वैदिक कर्मानुसार, परिवार, समाज तथा राष्ट्र को अच्छा बनायें अर्थात् अच्छा वातावरण बनाकर जाएँगे तो अगले जन्म में फिर अच्छा ही मिलेगा! यदि हम वातावरण को वेद विरुद्ध आचरण, हिंसा की प्रवृत्ति तथा स्वार्थ-खोरी से गन्दा बनाकर जाएँगे तो जो बोया है वही आकर काटना पड़ेगा अर्थात् ऐसे ही गन्दे स्थान पर दुबारा आकर जन्म लेंगे जिसका नाम है "**नरक**"।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास, सुख, समृद्धि, शान्ति एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित वचन पालन करने योग्य हैं जो कि **स्वर्ग (सुख)** के सोपान हैं।

1. **वेदों** का पढ़ना और पढ़ाना।
2. **यज्ञों** का अनुष्ठान।
3. **धर्म** को धारण करना।
4. शुद्ध **ज्ञान**।
5. **सत्य** वचन।
6. **विद्या** अर्जन।
7. **तपस्वी** जीवन।
8. **ब्रह्मचर्य** का पालन।
9. सात्विक **दान**।
10. नित्य प्रति **स्वाध्याय**।
11. **अहिंसामय** जीवन।
12. **व्रत** का वरण।
13. **परोपकार** की भावना।
14. **सत्** आचरण।
15. "**श्रेष्ठ कर्म**"।

DEPENDENCE

Dependence is such a universal factor, no one can escape till one lives- in every situation, inter dependence prevails.

For example: a newly – born is totally dependant on its mother. The joy and pleasure of its parents depends on its innocent actions, its well – being and on it's growing up well.

AS it grows older and moves out into the world, its preferences change it likes to experience so many new things in life. Its mental facilities increase and it enjoys self – confidence and a stronger will power. For these help comes through guidance of its teachers and parents. Its achievements in the years to come, depend mainly on the knowledge imparted by its teachers and parents. A lot depends on the company of its friends and relatives. Its character depends upon the values and ' sanskars' (संस्कार) imbibed by its parents and grand – parents. Its Knowledge about the heritage and traditions of the family depends on the information conveyed through the parents and the grand – parents.

Its attitude towards life depends on the atmosphere created by the compatibility between its parents. A lot of prosperity, happiness and peace depend upon the house - hold atmosphere.

After getting fully equipped, settled in life, married – the couple is inter – dependant on each other regarding their ambitions, aims, plans etc.

Their children's future depends on the wise decisions taken for their future life.

In this world of competitions inter – dependence is needed with co – workers in the work – place, neighbours and funny but true with the domestic help as well.

After having completed all the duties of life – quite satisfactorily, one enters a phase which is non – productive. One deteriorates physically and mentally as well – dependence on others increases. In spite of its being a fact of life, it is detested. This situation can be modified with a simple determination of "self – help". Start doing add jobs required for one- self and if possible, for others as well. Help the needy.

Go outdoors at least once a day. Do not indulge in sad happenings of the past. No one has enough time to listen even to the present grievances. No grudges, only thanks giving to the Almighty. Remain cheerful and convey your sweet blessings from the heart. Do only good deeds to earn a rebirth as a human being.

Not to worry about your dependence, this cycle will go on and on and keep repeating itself.

- Sudarshan Rai

– गतांक से आगे

THE VEDIC LIGHT

(Swami Vidyanand Sarswati ji)

EVOLUTIONARY PROCESS

It has become a platitude to say that there has always been a growth, a development or an evolution in every sphere of life. T. Burrow, for instance, says in 'sanskrit language' (page 40) – "Many of the change of meaning occurred in the natural 'growth of the language'.

A.B. Keith has also used the word 'Development', saying, "From the language of the Rigveda one can trace a steady 'development' of classical Sanskrit." (History of Sanskrit Literature, P.4)

F. Bopp, father of comparative Philology in 'Comparative Grammer of Sanskrit, Greek, Latin and other Languages, Vol. I has used the word 'Development ' in this context at page -4 " Language in its stages of being and march of development."

Some Indian philologists also who have followed western writers indiscreetly, have held the same view.

Evolution refuted – when we compare the most ancient archaic Vedic language with the modern classical Sanskrit, we find that the platitude is false and instead of 'growth' or 'development' there has been decay.

For instance –

(1) In the Vedic Leseicon (Nighantu) we have 57 synonyms of 'Vach'(वाच्) = speech) of which very few have survived in classical Sanskrit.

(2) Out of 101 names for water in Vedic Sanskrit only 27 remain in classical Sanskrit.

(3) There are 37 names for 'Megha' (cloud) in Vedic Sanskrit, but only 15 are to be found in classical Sanskrit.

(4) And out of 26 synonyms of 'Krama' in Vedic Sanskrit only 2 are left in classical Sanskrit.

It is gratifying to note that some distinguished western Indologists are also opposed to this theory of growth or evolution of language. As for instance –

1. Sir William jones says: "The Sanskrit language whatever be its antiquity, is of a wonderful structure – more perfect than Greek, more copious than Latin and more exquisitely refined than Spanish or French.

2. Maxmuller, no great friend of India, says: 'They have reduced the rich and powerful idiom of the poets of the Veda to the meager and impure jargon of the modern sepoy." (Lectures on the science of Language, Vol. I p. 36)

Again on page 48 The writes: 'We are accustomed to call those changes 'growth' of language, But it would be more appropriate to call this a process of phonetic change or decay."

Adding on page 272, he says: "on the whole, the history of all Aryan languages is nothing but a gradual process of decay."

And lastly, Gray has to say – "In Indo-Europeon we find 8 distinct case forms in Sanskrit; Greek and Lithunion have 7; Hittait and cold church Slavie 5; Old French and modern English only 2; Albanian and American and old English3.

This reduction in the number of case forms with the result that some of them take over the functions of one or more others-gives rise to the linguistic phrase now known as SYN Cretism.

The reason for this seems to be phonetic decay of the characteristic case- endings. (Foundations of language, p.201) From the study of the various historical language of the world

R.N. DEL BIL/2007/22120
DL (C)-14/1181/2011-2013

ओ३म्

Date of Posting 12 & 13, S.R.T. Nagar, ND-55
Date of Publication 8-7-2013

we have arrived at the inevitable conclusion that it is not classical Sanskrit (which of course is the first or the eldest daughter of the mother) but Vedic which is the mother of all the language of the world. Vedic is the language which was spoken in the beginning of creation by the Aryans when they lived under the same roof in Tibet in the Himalayas before dispersing for their respective homes the world over.

It was an astounding discovery that Aryavarta(=Bharata, that is India) possessed a language of unrivalled richness – a language, the parent of all those languages and dialects that Europe has fondly called classical – the source alike of the Greek flexibility and the Roman strength.

The Vedas were revealed to the earliest man that is in the beginning of the creation. Since then they were traditionally, handed down to posterity with utmost care inaccuracy. The sanctity of the text prevented interpolations and alterations. The ancients were not satisfied with the संहिता पाठ of the Vedic verses. They retained the Padapatha also with proper accentuation. We can thus entirely rely on the Vedic texts available to us today in the form of padapatha. "We have then," says Aurobindo, "as our basis a text which we can confidently accept and which, even if we hold it in a few instances doubtful or defective does not at any rate call for that licentious labour of emandation to which some of the European classics lend themselves.

Eulogising the Brahmanas for maintaining the accuracy and sanctity of Vedic text, Maxmuller says: "The text of the Vedas have been handed down to us with such accuracy that there is hardly a various reading in the proper sense of the world or even an uncertain aspect in the whole of the Rigveda." (Origin of Religion.p.131)

And Macdonell went to the extent of asserting that the Vedas can be reproduced from the mouths of the Brahmanas in the form in which they are said to have been initially uttered in the beginning of the creation.

Some people reject the need for divine revelation at the time of human revelation the plea that such revelations dawn from time to time without any super-human intervention. But belief in such revelation has led to great exploitation by men who claim Divinity for themselves.

– क्रमशः

कम्प्यूटर वितरण

दिनांक 23 जून 2013 को प्रातः साप्ताहिक रविवारीय सत्संग, के पश्चात् आर्य समाज राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली के भव्य सभागार में दिल्ली स्थित विभिन्न आर्य विद्यालयों–संस्थाओं की शिक्षा में विशेष अभिरुचि संवर्धन हेतु 15 कम्प्यूटर वितरित किए गए। इस अवसर पर पूर्व राजदूत श्री के.एल.गंजू एवं सुप्रसिद्ध शिक्षाविद श्री सुशील सलवान जी उपस्थित थे। दोनों महानुभावों ने आर्य समाज राजेन्द्र नगर द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे सकारात्मक सहयोग की भूरि–भूरि प्रशंसा की। ज्ञातव्य है कि इस आर्यसमाज द्वारा प्रतिवर्ष श्रावणी पर्व के अवसर पर जरुरतमन्द छात्र–छात्राओं को लक्षाधिक रुपयों की छात्र वृत्ति प्रदान की जाती है। श्री के.एल. गंजू साहब ने इस अवसर पर दस छात्रों को 750 रुपये प्रतिमास की छात्रवृत्ति देने की घोषणा की। उन्होंने संकल्प लिया कि आर्य समाज के माध्यम से छात्रों के लिए यह सहयोग आजीवन करते रहेंगे। समाज के यशस्वी प्रधान श्री अशोक सहगल जी ने श्री गंजू साहब और श्री सुशील सलवान जी के प्रति समारोह में पधारने पर हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की। आर्य समाज के कर्मठ मन्त्री श्री सतीश मेहता जी ने समारोह में उपस्थित सभी आर्य जनों का हार्दिक धन्यवाद करते हुए आर्यसमाज की गतिविधियों से जुड़ने तथा इसके प्रचार–प्रसार में सक्रिय सहयोग के लिए सबको आमन्त्रित किया।

Printed and published by Sh. N.M. Walecha Secretary on behalf of Arya Samaj, Rajinder Nagar and printed at Gurmat Printing Press, 1337, Sangatrashan, Pahar Ganj, New Delhi-55 Ph. : 23561625 and published at Arya Samaj, Rajinder Nagar, New Delhi-110060. *Editor* : Dr. Bhardwaj Pandey